स्कूल स्तर पर इतिहास शिक्षण का नजरिया

सी.एन. सुब्रह्मण्यम से विश्वंभर की बातचीत

यह बातचीत आरंभिक शिक्षा में इतिहास शिक्षण की समस्याओं पर केन्द्रित है और मुख्यतः इन समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया है- आरंभिक शिक्षा में इतिहास शिक्षण के उद्देश्य क्या हों और इस संदर्भ में इतिहास को कैसे समझें ? इतिहास की पाठ्यपुस्तकों की क्या समस्याएं हैं और इतिहास शिक्षण के उपयुक्त तरीके क्या हों ?

प्रश्न : इस बातचीत में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि स्कूली शिक्षा में इतिहास शिक्षण के नाम पर जो कुछ चल रहा है उसकी समस्याएं क्या हैं और इतिहास के बेहतर शिक्षण के लिए क्या किए जाने की जरूरत है। आप वर्तमान स्कूली शिक्षा में इतिहास शिक्षण की क्या समस्याएं देखते हैं ?

उत्तर : स्कूली शिक्षा में इतिहास शिक्षण को लेकर हर स्तर पर समस्या है। इतिहास शिक्षण के लिए जो किताबें बनाई जाती हैं वे इतिहास शिक्षण के मान्य उद्देश्यों को संप्रेषित नहीं करतीं और इतिहास शिक्षण के लिए शिक्षकों की तैयारी पर्याप्त नहीं होती। कक्षा-कक्षीय प्रक्रियाओं और मूल्यांकन में भी समस्या है। सभी तरफ समस्या है। मुद्दा यह है कि पहल कहां से शुरू करें ?

प्रश्न : आपने कहा कि पाठ्यपुस्तकों में समस्या है। आप किस तरह की समस्याओं की और संकेत कर रहे हैं ?

उत्तर : हमारे देश में इतिहास की पाठ्यपुस्तकें दो तरीके से लिखी या बनाई जाती हैं। एक तरह से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) पाठ्यपुस्तकें बनाती है। दूसरे तरह से अलग-अलग राज्यों में या निजी प्रकाशक पाठ्यपुस्तक लिखवाते हैं। एनसीईआरटी आमतौर पर किसी प्रसिद्ध इतिहासकार को किताब लिखने का जिम्मा देती रही है कि आप किताब बनाकर दो। इससे, कम से कम, यह फायदा होता है कि जो किताबें लिखी जाती हैं वे तथ्यात्मक रूप से सही होती हैं और वे इतिहास के नवीनतम नजरिए, चलन और समझ के अनुरूप होती हैं। हालांकि इसमें भी कई समस्याएं हैं। लेकिन जो किताबें राज्यों या निजी प्रकाशकों द्वारा बनवाई जाती हैं उसमें किताब लिखने की जिम्मेदारी या तो स्कूली शिक्षक या शिक्षकों की टीम को दे देते हैं या किसी कॉलेज प्राध्यापक को, जो कि सामान्यतः इतिहास के शोध कार्य या पेशे में सक्रिय नहीं होता।

पाठ्यपुस्तक निर्माण के दो सिरे हैं। एक सिरे पर वे लोग हैं जो कि इतिहास के पेशे में अग्रणी लोग हैं तो दूसरे सिरे पर वे लोग हैं जो बच्चों को इतिहास पढ़ाते हैं। इतिहास की पाठ्यपुस्तक निर्माण का कार्य इन दो सिरों के बीच में झूलता रहता है। जो बच्चों को पढ़ाते हैं उन्होंने बहुत ज्यादा इतिहास नहीं पढ़ा होता और जो पेशेवर इतिहासकार हैं वे इतिहास तो जानते हैं लेकिन उन्होंने बच्चों को नहीं पढ़ाया होता है। एनसीईआरटी देश को एक तरह से मानक पाठ्यपुस्तक बनाकर दे देती है जिससे राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एससीईआरटी) अपने यहां के शिक्षकों के साथ मिलकर, जोड़-तोड़कर या बदलकर नई किताब बना लेते हैं। कुल मिलाकर समस्या यह है कि इतिहास की ऐसी किताबें नहीं बन पातीं जो कि इन दो तरह के लोगों के आपसी संवाद से पेशेवर तौर पर वैध, बच्चों की जरूरत, स्कूली अनुभव और स्कूल के यर्थाथ के अनुरूप हों। इस तरह का आपसी संवाद इतिहास की किताबों में आ नहीं पाता। एनसीईआरटी

लेखक परिचय : जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए., करीब 25 वर्षों से स्वयं सेवी संगठन एकलव्य, भोपाल से संबद्ध और सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में इतिहास विषय पर कार्य। संप्रति : एकलव्य, भोपाल के निदेशक।

सम्पर्क : ई-7/453, एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16, मध्यप्रदेश

के पास भी इस तरह के अनुभवों को लाने की स्थिति नहीं है और न ही एससीईआरटी के पास है। हमारा मानना है कि किसी भी विषय की पाठ्यपुस्तकें- इतिहास, गणित या भाषा की- इस तरीके से नहीं लिखी जाती।

किसी विषय का विशेषज्ञ होना एक बात है लेकिन बच्चों के लिए उस विषय की पाठ्यपुस्तक बनाना अलग बात है। पाठ्यपुस्तक बनाने के लिए किसी भी विषय का विशेषज्ञ होना एक मात्र योग्यता नहीं है। इतिहास जानने के साथ-साथ इतिहास स्कूल में कैसे पढ़ाएं, स्कूल के संदर्भ में क्या जरूरत है, इसका आभास और अनुभव पाठ्यपुस्तक बनाने वाले को होना चाहिए। अगर मान भी लें कि इन दोनों चीजों को साथ ले आएं, फिर भी इतिहास की किताब लिखना और इतिहास शिक्षण को ध्यान में रखते हुए किताब लिखना अलग-अलग चीज है। मैं भारतीय इतिहास की एक संक्षिप्त पाठ्यपुस्तक बना सकता हूं लेकिन वह एक बेहतर शिक्षाशास्त्रीय उपकरण हो यह जरूरी नहीं है। यदि मैं किसी स्कूल में शिक्षक हूं और बच्चों को इतिहास पढ़ा रहा हूं तो मुझे ऐसी सामग्री चाहिए जिसकी मदद से मैं बच्चों में इतिहास की समझ, इतिहास जानने के तरीके और इतिहास का सौन्दर्य बोध; इतिहास में एक सौन्दर्य बोध भी होता है, बच्चों में विकसित कर पाऊं। लेकिन वस्तुतः जो पाठ्यपुस्तक बनती हैं उनमें प्रायः ये तीनों ही चीजें नहीं होतीं। सामान्यतः जो इतिहास की पाठ्यपुस्तक लिखते हैं- वे इतिहास क्या है, इतिहास का स्वरूप क्या है और इतिहास के स्वरूप की किन चीजों को, किस कक्षा में और किस प्रकार विकसित करें; यह सोचकर नहीं बनाते।

निश्चित ही रोमिला थापर, सतीश चन्द्र या विपिन चन्द्र इतिहास की किताबें लिखेंगे तो वे बेहतर होंगी। बेशक उनके दिमाग में इतिहास का फलसफा और इतिहास की पद्धति होती होंगी। इनसे बेहतर जानने वाले लोग तो बहुत ही कम होंगे लेकिन इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का ये एक अंश है, जो उनकी किताबों में झलकता है। इससे पाठ्यपुस्तकें अच्छी जरूर बन जाती हैं लेकिन वे एक अच्छी शिक्षण सामग्री नहीं बन पातीं। इस तरह की खामी उनमें थी, इस तथ्य के बावजूद कि वे हमारे देश के उच्च कोटि के इतिहासकार हैं और इन्होंने इस देश में कई पीढ़ियों के इतिहासकार बनाए हैं एवं इतिहास पर शोध कराए हैं। इसके बावजूद यह महत्त्वपूर्ण सवाल बना रहता है कि स्कूल की पाठ्यपुस्तक कैसे बननी चाहिएं ? क्योंकि इसके लिए एक अलग तरह के अनुभव की जरूरत होती है, स्कूलों में बच्चों के साथ काम करने के लिए समय निकालना पड़ता है। शिक्षकों के साथ विषय पर भिड़ना पड़ता है और उस भिड़न्त में आप खुद से सवाल पूछने लगते हैं कि इतिहास क्या है ? इतिहास का तरीका क्या है ? इस समझ को मैं किस स्तर पर, कैसे पढ़ाऊं ? इसके लिए किसी भी इतिहासकार को समय निकालना पड़ेगा और कम से कम पांच-दस साल इस प्रक्रिया में निकालने पड़ेंगे। लेकिन हमारे यहां इतिहास की पाठ्यपुस्तक लेखन के लिए जो ढाचें बने हैं उसमें इसके लिए पर्याप्त अवसर नहीं हैं।

प्रश्न : इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के संदर्भ में ये तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन हमारे यहां जिस तरह इतिहास पढ़ाया जाता है उसमें यह देखने में आता है कि इतिहास को एक रटने वाला विषय मान लिया जाता है। किताबों में भी विवरण होते हैं जिनको रटना भर होता है। क्या वजह है कि हमारे यहां इतिहास के उद्देश्यों और पढ़ाने के तरीकों पर बहस करते हुए पाठ्यपुस्तकें नहीं बनती ?

उत्तर : यह सिर्फ इतिहास के बारे में ही सच नहीं है। इन समस्याओं से संबंधित बहस तो किन्हीं और विषयों के संदर्भ में भी नहीं उठ रही है। यह न तो गणित के बारे में उठ रही है, न भाषा के बारे में। थोड़ी बहुत गणित और भाषा के बारे में जरूर उठती है लेकिन अर्थशास्त्र कैसे पढ़ाना चाहिए, भूगोल या नागरिक शास्त्र कैसे पढ़ाए जाने चाहिएं, इनके बारे में भी यह बहस नहीं उठ रही है। यह सही है कि सबसे ज्यादा बहस इतिहास पर ही होती है लेकिन ऐसा दूसरे कारणों से होता है। शिक्षाशास्त्रीय नजर से हिन्दुस्तान में प्रायः किसी विषय पर यह बहस नहीं होती। ऐसा क्यों है, यह एक समाजशास्त्रीय समस्या है। क्यों हम अपने बच्चों की शिक्षा को विवाद का मुद्दा नहीं बना पाए ? यह एक ज्यादा बड़ा और व्यापक मुद्दा है, व्यापक समस्या

है। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के कारण थोड़ी-बहुत विज्ञान को लेकर बहस जरूर हुई है।

प्रश्न : यह सही है कि शिक्षा बहस का मुद्दा नहीं बन पा रही है। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम ने जो बहस उठाई थी वह अनुभव भी 30-35 साल पहले का है।

उत्तर : यह अनुभव 2002 तक का है। यदि इसको एक आधार मानें तो यह कह सकते हैं कि जिस विषय में वैकल्पिक प्रयोग हुए हैं वहां बहस करने की कुछ गुंजाइश बनती है लेकिन जिस क्षेत्र में प्रयोग ही नहीं हुए हैं या प्रयोग करते ही नहीं हैं, वहां बहस कैसे होगी ?

प्रश्न : लेकिन विज्ञान शिक्षण का जो अनुभव होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से निकला वह भी व्यापक स्कूली व्यवस्था में कितना आ पाया ? उसे कितना अपनाया गया ?

उत्तर : अपनाया जाना या नहीं अपनाना दूसरा मुद्दा है। आपका सवाल है बहस का मुद्दा क्यों नहीं बना ? इस देश में आज यह बहस की जा सकती है कि विज्ञान कैसे पढ़ाई जाए। इसके लिए हमारे पास थोड़ा-सा अनुभव है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि वह अच्छा था या बुरा था; इससे कुछ निकला या नहीं निकला। इस अनुभव के बाद आप बहस कर सकते हैं। लेकिन अर्थशास्त्र कैसे पढ़ाया जाना चाहिए ? भूगोल कैसे पढ़ाया जाना चाहिए ? इसके ऊपर न बहुत ज्यादा अनुभव है और न ही काम। सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में हम कह सकते हैं कि एकलव्य ने कुछ काम किया है लेकिन मात्रात्मक दृष्टि से वह इतना नहीं है जिसके आधार पर राष्ट्रीय बहस की जा सके। दूसरे, इतिहास को लेकर भी ज्यादा बहस विषयवस्तु को लेकर होती है कि इसका भगवाकरण हो गया या वामपंथीकरण या दक्षिणपंथीकरण हो गया। लेकिन इतिहास शिक्षण का तरीका क्या हो, इतिहास शिक्षण के उद्देश्य क्या हों, इसकी पद्धति क्या हो, इतिहास शिक्षण का व्यापक नजरिया क्या है; इसे लेकर न तो और कहीं काम हुआ है और न ही किसी तरह का अनुभव है।

किसी विषय का विशेषज्ञ होना एक बात है लेकिन बच्चों के लिए उस विषय की पाठ्यपुस्तक बनाना अलग बात है। पाठ्यपुस्तक बनाने के लिए किसी भी विषय का विशेषज्ञ होना एक मात्र योग्यता नहीं है। इतिहास जानने के साथ-साथ इतिहास स्कूल में कैसे पढ़ाएं, स्कूल के संदर्भ में क्या जरूरत है, इसका आभास और अनुभव पाठ्यपुस्तक बनाने वाले को होना चाहिए।

प्रश्न : यह एक स्थिति है। आपके हिसाब से इतिहास शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं या होने चाहिएं ? क्या इसका उद्देश्य सिर्फ अपने अतीत को जानना भर है या कहीं इससे ज्यादा ?

उत्तर : यदि पाठ्यपुस्तकीय भाषा में कहें तो इतिहास शिक्षण का उद्देश्य ऐतिहासिक नजरिया विकसित करना है। इसे खोलकर देखने के प्रयास में सवाल खड़ा होता है कि ऐतिहासिक नजरिए का अर्थ क्या है ? हम यह मानते हैं, हो सकता है कुछ लोग इससे अलग मानते हों, कि दुनिया बदलती है और बदलाव; जैसा कि बुद्ध ने कहा-इसके सिवाय और कोई निश्चित चीज नहीं है। हर चीज बदलती है, यही एक ऐसी बात है जो नहीं बदलती है। इतिहास शिक्षण का एक उद्देश्य बदलाव को समझना और उसे साध पाना है। बदलाव किस दिशा में और क्यों हो रहा है ? कैसे हो रहा और इस बदलती दुनिया में अलग-अलग लोगों का क्या स्थान है ? हम मानते हैं कि बदलाव को पहचानना और समझना ऐतिहासिक नजरिए की पहली जरूरत है।

ऐतिहासिक नजरिए का दूसरा मुद्दा कार्य-कारण संबंध को समझना है। कोई बदलाव हुआ तो क्यों हुआ ? इस बदलाव का किस तबके पर क्या प्रभाव पड़ा ? यदि इस बदलाव का एक तबके ने ज्यादा फायदा उठाया तो कैसे उठाया ? इस बदलाव की प्रक्रिया में फलां तबका कैसे हावी हुआ या ताकतवर बना ? बदलाव के संदर्भ में 'क्यों' और 'कैसे' वाले सवाल इतिहास में पूछे जाते हैं। 'कैसे' वाले सवाल पूछना इतिहास का दूसरा मकसद है। इनके जवाब के लिए थोड़ा गहराई में जाना पड़ता है और समाज के अलग-अलग घटकों के आपसी अन्तर्संबंधों को समझना पड़ता है। इसी के आधार पर इस सवाल का उत्तर निकालते हैं। मान लीजिए एक सवाल है, मुगल साम्राज्य का पतन क्यों हुआ ? इस सवाल का उत्तर देने के लिए मुगल साम्राज्य का

राजनैतिक ढांचा समझना पड़ेगा और उसमें हो रहे बदलावों को समझना पड़ेगा। उस राजनैतिक ढांचे और खेतिहर समाज व खेतिहर उत्पादन के बीच के रिश्ते को समझना पड़ेगा, क्योंकि उसी पर राजनैतिक ढांचा निर्भर था। वह राजनैतिक तंत्र कैसे टूटा, इसे समझने के लिए इन सब चीजों का अध्ययन करना पड़ेगा। यानी उस समाज के विभिन्न घटकों के अन्तर्संबंधों को समझते हुए, इस सवाल के जवाब की पड़ताल करनी होगी। इसके और भी पक्ष हैं। कहने का मतलब है कि पहला उद्देश्य परिवर्तन को पकड़ पाना और समझ पाना है। दूसरा, कार्य-कारण संबंध को समझना है, जिसके लिए समाज के अंतर्संबंधों को खोजने की कोशिश करते हैं।

तीसरा मुद्दा इतिहास बोध, इतिहास दर्शन से जुड़ा है। अर्थात् अतीत के बारे में जो जानकारी लेते हैं, वह किसी सामाजिक संदर्भ के प्रिज्म के प्रत्यावर्तन से निकलकर आती है। उदाहरण के लिए, अतीत के बारे में जो व्यक्ति सवाल पूछ रहा है वह एक खास सामाजिक संदर्भ में खड़ा होता है, अपने समाज से जूझते हुए उसके मन में सवाल खड़े होते हैं जिन्हें वह पूछता है। यह सवाल अपने आप किसी इंसान के दिमाग में नहीं आ जाता कि मुगल साम्राज्य का पतन कैसे हुआ ? जिस समाज में इतिहासकार रहता है वहां इस प्रश्न का उत्तर खोजना जरूरी हो जाता है, तभी वह यह सवाल पूछता है या उस समाज से जूझते हुए यह महसूस होने लगता है कि इन प्रश्नों के उत्तर होने चाहिएं।

प्रश्न : क्या यह कह सकते हैं कि जब इतिहासकार या कोई व्यक्ति किसी समस्या के मूल या जड़ की खोज करने की कोशिश करता है तो वह इस तरह के सवालों से जूझता है ?

उत्तर : यह भी होता है लेकिन मैं दूसरी चीज कहने की कोशिश कर रहा हूं। हर व्यक्ति सवाल इसलिए नहीं पूछता कि उसे सवाल पूछना अच्छा लगता है। वह अपने सामाजिक संदर्भ से जूझने के लिए सवाल पूछता है। जैसे, अंग्रेजों ने सवाल पूछा कि भारत का इतिहास क्या है ? यह सवाल पूछने का मुख्य मकसद शायद यह था कि हमने जिनके ऊपर हुकूमत कायम की है, जिनको हमें सम्भालना है या नियंत्रण में रखना है; उनका चरित्र क्या है ? उनके दिमाग में ये सवाल थे। वे सिर्फ हिन्दुस्तानियों का चरित्र ही नहीं जानना चाहते थे बल्कि वे यह तरीका भी ढूंढ़ रहे थे कि क्या कहने से इन्हें हम काबू में रख सकते हैं। उन्होंने इस सवाल के जो भी अलग-अलग तरह से जवाब ढूंढ़े, उनसे मुख्य आशय यह निकाला कि भारतवासी स्वराज्य के काबिल नहीं हैं। ये खुद को नहीं सम्भाल सकते। यदि इनको अपने हाल पर छोड़ा तो ये सब लड़ मरेंगे। ये अपना शासन खुद नहीं चला सकते।

इससे विपरीत राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की परंपरा को ले लीजिए जिसमें यह माना गया कि हमारा इतिहास और सभ्यता तो महान है और हम तो सब कुछ करने में समर्थ हैं। ये उस समय के समाज में उठ रहे सवालों के पैटर्न हैं जो लोगों ने उस समय समाज से जूझते हुए या संघर्ष करते हुए उठाए। इनके जवाब क्या होंगे, किस दिशा में होंगे यह काफी हद तक उनके सामाजिक संदर्भ से तय होता है।

मैं एक ऐसे सामाजिक सोच से जुड़ा हूं या ऐसे आन्दोलन से जुड़ा हूं जो यह मानता है कि इस देश का उद्धार तभी होगा जब यहां के गरीब लोग सत्ता में आएंगे और यहां का सम्पन्न या सरमायेदार वर्ग खत्म हो जाएगा। यदि मैं इस सोच से भारतीय इतिहास के बारे में सवाल पूछूंगा तो मेरा सवाल होगा कि भारतीय इतिहास में गरीब, दलित, आदिवासी या पीड़ित लोगों का क्या स्थान, अनुभव और संघर्ष रहा है ? ऐसी स्थिति में मेरा एक सवाल यह बन जाता है जो शायद एक राष्ट्रवादी इतिहासकार के लिए सवाल बनता ही नहीं है। राष्ट्रवादी इतिहासकार कभी नहीं चाहेगा कि इस देश के अन्दर जो विभेद हैं उनको लेकर सवाल खड़े किए जाएं। राष्ट्रवादी इतिहासकार तो कहेगा कि हम सब एक हैं, हम सब भारतीय हैं और हमें अंग्रेजों से लड़ना है। कहने का मतलब है कि जिस मकसद से सवाल पूछे जाते हैं उससे सवाल भी तय होता है और जवाब की दिशा भी तय होती है। यह एक पक्ष है। इसके विपरीत जानकारी के जिन स्रोतों से मैं जवाब ढूंढ़ रहा

हूं, उनका भी यही हाल है। जो भी इतिहासकार या लेखक पुराने समाजों का लेखा-जोखा लिखकर छोड़ जाते हैं वह भी हवा में तो नहीं लिखा होता है। वह भी एक सामाजिक संदर्भ में ही लिखा होता है। किसी इतिहासकार ने सोचा हो सकता है कि यदि बादशाह या उसके बाप-दादाओं की तारीफ कर दूं तो शायद बादशाह कोई वजीफा दे दे। और ऐसा भी होता है कि किसी राजा ने किसी इतिहासकार को वजीफा नहीं दिया तो वह उससे नाराज होकर उसका कच्चा चिट्ठा लिख दे। ऐसे भी इतिहासकार हुए हैं भारत में। यदि कोई इतिहासकार किसी राजा का दरबारी होता था तो उसे अच्छा बता देता था और उसके दुश्मन राजा को बदमाश घोषित कर देता था। इसी तरह यदि कोई भक्त आदमी है और वह मानता है कि भगवान तो बड़े ही महान हैं तो वह भक्ति के संदर्भ से ही दुनिया को देखते हुए लिखेगा।

कहने का आशय है कि इतिहासकार जो सवाल पूछता है और जिन स्रोतों की मदद से जवाब देता है उनका एक सामाजिक संदर्भ होता है। इतिहास में जो जवाब दिए जाते रहे हैं वे तयशुदा और भगवान के दिए हुए जवाब नहीं होते। मैं नहीं कह सकता कि दूसरे विषयों में ऐसा होता है या नहीं, भौतिकशास्त्र में ऐसा होता है या नहीं। शायद भौतिकशास्त्र में भी ऐसा होता हो लेकिन इतिहास में यह एक सच्चाई है कि जब इतिहासकार कोई सवाल पूछता है तो सवाल के साथ वह अपनी सामाजिक स्थिति और संदर्भ का भी बखान करता है। जब वह किसी स्रोत का उपयोग करता है तब भी उसको यह बताना पड़ता है कि जो स्रोत मुझे मिल रहा है वह किस सोच के तहत बना है।

दुनिया में कोई भी जिज्ञासा मुफ्त में नहीं आती। खास समय पर और खास चीजों की जिज्ञासा होती है। आप भौतिकशास्त्र, रसायन विज्ञान या भूगोल, किसी को भी ले लीजिए; हमेशा इंसान ने यह नहीं पूछा है कि सात समुन्दर पार क्या है ? यह कोलम्बस को या उस जमाने के अन्य कई लोगों को सूझा। क्योंकि उन्हें अपना व्यापार करना था, व्यापार बढ़ाना था। यूरोप में व्यापार को बाहर के देशों में बढ़ाने का दबाव लगातार बढ़ रहा था।

कुछ स्रोत ऐसे होते हैं जो किसी सोच के तहत लिखे जाते हैं और कुछ ऐसे होते है जो अनायास मिल जाते हैं। मान लीजिए, खुदाई करते हुए कुछ अवशेष मिल जाते हैं। किसी ने नहीं सोचा होता कि यहां मटका या झाड़ू मिल जाएगा। वहां तो लोग रह रहे थे और वे चले गए तो ये वहां रह गईं जो कि पुरात्त्ववेता को मिल गईं। लेकिन इसमें भी यह सवाल उठता है कि यही बचा तो क्यों बचा ? लाखों चीजें उस घर में इस्तेमाल की गई होंगी लेकिन जो बचा है वह ईंट या घड़ा है। इसके आधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनके घर में सिर्फ एक घड़ा या ईंट ही थी। इनके आधार पर इतिहासकार को अनुमान लगाना पड़ेगा कि जो चीजें बची हैं किन परिस्थितियों में और क्यों बचीं ? कौनसी चीजें हैं जो नहीं बचीं ? इसका मतलब है कि जो चीजें पता है उससे उन चीजों का अन्दाजा लगाना पड़ता है जिनके बारे में नहीं पता है। इसी प्रकार एक दरबारी इतिहासकार के कथन से यह पता लगाना होता है कि और क्या चीजें रही होंगी जिन्हें यह नहीं बता पाया। मैं कहूंगा कि इतिहास शिक्षण या इतिहास लेखन के ये तीन प्रमुख मुद्दे हैं- बदलाव, समाज के अंतर्संबंध व इतिहास लेखन का सामाजिक संदर्भ।

प्रश्न : यदि इतिहासकार हमेशा ही अपने सामाजिक संदर्भ के साथ इतिहास लेखन का काम करते हैं तो क्या इसका मतलब यह है कि हम अतीत के वास्तविक रूप को जान ही नहीं सकते ?

उत्तर : वास्तविक अतीत से आशय क्या है ? वास्तविक अतीत का अन्दाजा ही लगाया जा सकता है। आप पूरी तरह वास्तविक अतीत को जान ही नहीं सकते। उसका आप अनुमान लगा सकते हैं, उसके निकट जा सकते हैं लेकिन कभी भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि अब मेरे हाथ में परम सत्य आ गया है। कोई भी इतिहासकार कभी यह दावा नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पास सच्चाई जिस रूप में आ रही है वह इसी तरह आ रही है। यदि आज मैं यहां खड़ा होकर दिगन्तर को देखता हूं तो मुझे सिर्फ दिगन्तर की शिक्षा ही नहीं दिख रही। मुझे दिगन्तर का भवन और यहां के लोग भी दिख रहे हैं। लेकिन क्या दिगन्तर की सच्चाई सिर्फ यह भवन है या यह भवन और यहां के लोग हैं ? दिगन्तर की सच्चाई तो और बहुत कुछ है जो कि

इस भवन में मौजूद होने के बाद भी आज मेरे हाथ में नहीं है। बाहर वालों को तो छोड़िए, शायद यह दिगन्तर में रहने वाले लोगों के हाथ में भी नहीं है। क्योंकि आप दिगन्तर के एक पक्ष को देखते और अनुभव करते हैं। दिगन्तर की सच्चाई के अनगिनत पक्ष हो सकते हैं। मैं बाहर का व्यक्ति होने के नाते एक पक्ष देखता हूं जिसे आप कभी नहीं देख सकते। दूसरे व्यक्ति को दिगन्तर के बारे में जो महसूस हो रहा है क्या वह सच्चाई नहीं है ? क्या किन्हीं दो व्यक्तिओं को यह सच्चाई एक ही रूप में दिख रही है ? कुछ हद तक दोनों व्यक्तिओं को एक जैसी सच्चाई दिखेगी। सच्चाई स्वयं में क्या चीज है, यह खुद समस्यात्मक सवाल है। मैं होशंगाबाद से दिगन्तर को देखता हूं, मुझे कुछ और दिखता है। किसी वस्तुनिष्ठ चीज को देखना दृष्टि से ही संभव होता है, और सबकी दृष्टि अलग-अलग होती है। हमारे पास कोई ईश्वरीय दृष्टि तो है नहीं जो हर चीज के अन्दर देख सके! वो दिव्य दृष्टि अर्जुन को पांच मिनिट के लिए मिली थी! छठा मिनट होता तो वह युद्ध नहीं करता।

प्रश्न : क्या किसी व्यक्ति या इतिहासकार की अतीत को जानने की शुद्ध जिज्ञासा नहीं हो सकती ?

उत्तर : किसी को हुई है आज तक शुद्ध जिज्ञासा ?

प्रश्न : शायद जैसा कि दर्शन में कहते हैं कि आदमी सोचने लगा कि मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, यह प्रकृति कहां से और कैसे बनी ? इस तरह के सवाल तो हो ही सकते हैं। शायद यह शुद्ध जिज्ञासा हो। ऐसे ही और भी सवाल हो सकते हैं।

उत्तर : 'मैं कौन हूं' यह शुद्ध जिज्ञासा का सवाल नहीं है। यह अस्तित्व का सवाल है। लेकिन अकबर की बीबी जोधाबाई थी या मणी बाई, ये कोई शुद्ध जिज्ञासा का सवाल नहीं है। किसी को ऐसी प्राकृतिक जिज्ञासा नहीं होती कि अकबर ने कितनी शादियां की थीं। क्या कभी आपके मन में यह सवाल उठा था कि अकबर की बीबियों के क्या नाम थे ? आपके मन में कोई ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हुई है ?

दुनिया में कोई भी जिज्ञासा मुफ्त में नहीं आती। खास समय पर और खास चीजों की जिज्ञासा होती है। आप भौतिकशास्त्र, रसायन विज्ञान या भूगोल, किसी को भी ले लीजिए; हमेशा इंसान ने यह नहीं पूछा है कि सात समुन्दर पार क्या है ? यह कोलम्बस को या उस जमाने के अन्य कई लोगों को सूझा। क्योंकि उन्हें अपना व्यापार करना था, व्यापार बढ़ाना था। यूरोप में व्यापार को बाहर के देशों में बढ़ाने का दबाव लगातार बढ़ रहा था। इसलिए वे पता करने के लिए निकले थे कि दुनिया में और कौनसे देश हैं और सात समुन्दर पार क्या है। जिज्ञासा को भी समस्यात्मक सवाल के घेरे में लाना होता है कि किस विषय पर, कब और क्यों जिज्ञासा होती है। इसका एक ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ होता है। उसी तरह इतिहास के संदर्भ में यह देखे जाने की जरूरत है कि कब इतिहास का विषय बहस का मुद्दा बनता है।

प्रश्न : इसका मतलब यह हुआ कि इतिहास विचारधाराओं की लड़ाई से कभी भी मुक्त होने वाला नहीं है। ये लड़ाइयां चलेंगी और पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यचर्या में भी आती रहेंगी।

उत्तर : विचारधारा की लड़ाई ही इतिहास है। अगर लड़ाई नहीं है तो किस चीज का इतिहास है। उस लड़ाई में भाग लेने के लिए ही तो हम इतिहास रचते हैं। जिनको लड़ना नहीं है वे इतिहास थोड़े ही खोजते हैं।

प्रश्न : हमारी स्कूली शिक्षा में इतिहास शिक्षण में किसी घटना के कार्य-कारण संबंध को जिस तरह से पढ़ाया जाता है उससे लगता है कि किसी घटना के घटित होने में यही निश्चित कारण रहे हैं लेकिन क्या यह संभव नहीं है कि उसके अतिरिक्त कारण भी रहे हों ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि निश्चित कारणों के बजाए कारणों की संभावना की बात की जाए कि संभवतः ये कारण रहे होंगे।

उत्तर : देखिए, सिर्फ यह कहने से कोई बात नहीं बनती कि और भी कोई कारण रहे होंगे या अन्य सम्भावनाएं भी हैं। शायद इससे ज्यादा बेहतर तरीका यह होगा कि आप बच्चे को तर्क करने का मौका देते हैं, उनके सामने सिर्फ एक सवाल ही उठाकर छोड़ देते हैं कि आपको क्या लगता है- ऐसा क्यों हुआ होगा ? यदि अपनी तरफ से सारे कारण गिनाकर फिर बोलें कि पता करो आपके विचार से क्या कारण रहे होंगे, इससे

बात नहीं बनती। बजाए इसके यह किया जाए कि, मान लीजिए, मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। बच्चे को उसके आगे-पीछे का इतिहास बताएं और फिर कहें कि अब खुद सोचो कि ऐसा क्यों हुआ होगा ? स्कूली स्तर पर मुझे इसकी कोई चिंता नहीं होती कि बच्चों ने सभी प्रश्नों के उत्तर गलत दिए हैं। यदि बच्चे यह भी कह दें कि जोधाबाई नाम की ऐश्वर्या राय थी उसकी वजह से मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तो मैं इस बात से खुश रहूंगा कि बच्चों ने अपना दिमाग लगाया और उसको सोचने के लिए आपने मजबूर किया। उसने छठी जमात में क्या निष्कर्ष निकाला है दुनिया पर इससे कोई असर नहीं होने वाला है। लेकिन इस बात का जरूर असर होगा कि छठी जमात में उसने सोचना सीखा है या नहीं। दूसरी बात यह है कि जब इतिहास में बच्चों को हाथ पकड़कर सोचने की तरफ ले जाते हैं तो ऐतिहासिक चिन्तन का जो एक व्याकरण होता है उसे बच्चे समझने लगते हैं। बच्चे यह समझने लगते हैं कि ऐतिहासिक कार्य-कारण संबंधों को ढूंढ़ते हुए हमें इन-इन चीजों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना होगा। जब बच्चे कार्य-कारण संबंध को ढूंढ़ते हैं, उनके नियमों को खोजते हैं तो वे उसके तरीकों और व्याकरण को समझने लगते हैं और तब वह जिन्दगी भर उनके काम आता है। उन्होंने क्या निष्कर्ष निकाले, किसी चीज के पक्ष-विपक्ष में क्या तर्क दिए, शायद एक समय बाद वे बच्चे भी इन्हें भूल जाएंगे और आप भी भूल जाएंगे। हमारे दिमागों में जो असुरक्षा बोध है कि छठी जमात में बच्चों के दिमाग में गलत धारणा बैठ जाएगी तो अनर्थ हो जाएगा, इसे त्यागना पड़ेगा। बच्चों के साथ ऐसे प्रयोग करने चाहिएं कि सोचने की प्रवृत्ति जगाने के प्रयास में वे गलत चीजें भी बोलें। उनके निष्कर्षों से यह लग सकता है कि यह जवाब तो चलेगा ही नहीं। हो सकता है कि आपको वे निष्कर्ष खतरनाक लगें। बच्चे बोल सकते हैं कि भारत में सारी गड़बड़ियां मुसलमानों की वजह से या हिन्दुओं या ईसाईयों की वजह से हुई हैं। आपको लग सकता है कि बच्चों का चिन्तन दूसरी तरफ जा रहा है लेकिन मैं मानता हूं कि यदि बच्चे स्कूल स्तर पर सोचने लगें तो इससे ज्यादा संतुष्टि की कोई बात नहीं हो सकती। कार्य-कारण संबंध के बारे में उनसे बहस जरूर करें। मैं यही कहना चाहूंगा कि हम जो निष्कर्ष निकालना चाहते हैं उनको थोड़ी देर रोक लें। सही निष्कर्ष क्या है इसे सबसे पहले उड़ेलने की जरूरत नहीं है। यदि बच्चों को सोचने देंगे तो धीरे-धीरे वे कार्य-कारण संबंध को ढूंढ़ने का तरीका खोजने लगेंगे और उसको जीवन में भी अपनाने की कोशिश करेंगे।

प्रश्न : एक तरीका तो आपने बताया कि बच्चों से पूछें कि तुम बताओ कि इसके कारण क्या रहे होंगे। इसके अलावा और क्या तरीके हो सकते हैं जिससे बच्चे कार्य-कारण संबंध को सही मायने में खोजने लगें ?

उत्तर : एक तो यही है। दूसरा, उनको भी सवाल पूछने दीजिए। एक तरफ आप सवाल पूछेंगे दूसरी तरफ बच्चे सवाल पूछेंगे और दोनों मिलकर कोई जवाब ढूंढ़ेंगे। जो जवाब बच्चे देंगे उससे आपको संतुष्टि होनी चाहिए और जो जवाब आप बताएंगे उससे बच्चों को संतुष्टि होनी चाहिए। इस तरह के संवाद से ही यह संभव हो सकता है। लेकिन यह इससे नहीं होगा कि आप बच्चों को बताएं कि मुगल साम्राज्य के पतन के ये चार कारण हैं, दो कारण और भी हैं उन्हें तुम सोचकर लिखो, इससे यह नहीं होगा।

प्रश्न : प्रो. कृष्ण कुमार अपनी किताब 'मेरा देश, तुम्हारा देश' में कहते हैं कि इतिहास और संस्कृति के बारे में बच्चों का प्राथमिक सामाजीकरण बचपन में घर-परिवार से ही आरंभ हो जाता है। एक तरह का अनुकूलन घर-परिवार में होता है। आप कह रहे हैं कि यदि बच्चा छठी जमात में कोई गलत निष्कर्ष निकाल ले तो कोई समस्या नहीं है। हो सकता है कि जवाब उसके अनुकूलित मन से आ रहा हो। यह भी संभव है कि बचपन का यह अनुकूलन कहीं न कहीं बच्चे की भावी विचारधारा और सोचने के तरीके को बड़ी हद तक

प्रभावित करे। मान लीजिए, किसी घर में हिन्दुत्ववादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है तो बच्चे का भी एक स्वाभाविक रुझान उस तरफ होगा और उसका नजरिया उससे तय होगा। हालांकि इससे उलट परिणाम भी हो सकते हैं कि उसकी विचारधारा बदल जाए। लेकिन यह जीवन में मिलने वाली परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मेरा सवाल है कि बच्चे के प्राथमिक सामाजीकरण की चुनौती से स्कूल में कैसे निपटान करेंगे और स्कूल की इसमें क्या भूमिका हो सकती है ?

उत्तर : पिछले दो दिन से हम इस पर बात कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के सबसे प्रतिबद्ध नास्तिक और सबसे प्रतिबद्ध समाज सुधारक इसी तरह की रूढ़िवादी सामाजिक पृष्ठभूमि से निकले हुए हैं। ईश्वरचन्द विद्यासागर या रामकृष्ण परमहंस या रमाबाई सरस्वती से ज्यादा रूढ़िवादी पृष्ठभूमि से कौन होगा ! यदि यह सही है तो उनका क्या सामाजीकरण हुआ होगा, आप अंदाजा लगा सकते हैं।

प्रश्न : ऐसे उदाहरण तो बहुत कम मिलते हैं। आमतौर पर तो यही देखा जाता है कि बचपन के सामाजीकरण का प्रभाव गहरा होता है और इससे बाहर निकलना मुश्किल होता है।

उत्तर : ये तो कुछ उदाहरण हैं। लेकिन वे अकेले नहीं थे, उनके साथ हजारों-हजार लोग ऐसे थे। आर्य समाज के पूरे आंदोलन को ले लीजिए, वे सभी तो महासनातनी लोगों के बीच में से ही निकले थे और सनातनियों को प्रश्नित करते हुए ही वे आगे बढ़े। मुझे लगता है कि इसका बहुत ज्यादा डर नहीं पैदा करना चाहिए कि बच्चे का सामाजीकरण हो गया तो उसका अन्त हो गया। क्योंकि समाज में विभिन्न तरीके की धाराएं हैं। दुनिया में कोई भी समाज एकरूप नहीं हो सकता। समाज है तो समाज में द्वंद्व है। और यदि द्वंद्व है तो सामाजीकरण के नाम पर जो कुछ भी हुआ है उस पर सवाल खड़े करने के तत्व भी उसमें मौजूद हैं।

इस बात की कतई फिक्र करने की जरूरत नहीं है कि सामाजीकरण हो गया तो दुनिया का अन्त हो जाएगा। क्योंकि असल में द्वंद्व विकल्प को जिन्दा रखता है। सामाजीकरण, गैर-सामाजीकरण या स्कूल द्वंद्व को नहीं बनाता। यदि समाज में द्वंद्व है तो वह रहेगा। यदि समाज में दलित हैं और उच्च वर्ण के लोग हैं तो लाख सामाजीकरण के बावजूद सवाल तो खड़े होंगे ही। क्योंकि समाज में वह द्वंद्व है। इस देश का सबसे ज्यादा रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी समाज नम्बूदरी ब्राह्मणों का है, इससे ज्यादा रूढ़िवादी इस देश में आपको कोई नहीं मिलेगा। उनके बीच में ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद पैदा हो जाते हैं। कैसे होते है ? क्यों होते हैं ? यह सिर्फ एक ही उदाहरण नहीं है। पूरी कम्युनिस्ट पार्टी में ब्राह्मण भरे पड़े हैं। होता यही है कि कोई भी सामाजीकरण द्वंद्व से परे नहीं है और यदि दुनिया में द्वंद्व है तो चिन्ता करने की बात नहीं है।

प्रश्न : लेकिन इसकी एक समस्या है जिसको आमतौर पर देखा जा सकता है कि...

उत्तर : मैं एक उदाहरण देना चाहता हूं। आप किसी भी स्कूल में चले जाएं, मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि किसी भी स्कूल में 9वीं-10वीं में कम से कम 10-20 प्रतिशत बच्चे ऐसे निकल आएंगे जो कहेंगे कि भगवान-वगवान कुछ नहीं होता। ऐसा वे क्यों बोलते हैं ? तमाम सामाजीकरण के बावजूद समाज में ही, उसी सामाजीकरण से विरोधी विचार भी पनपता है और यह भी सामाजीकरण का ही एक हिस्सा है।

प्रश्न : यह तो मुमकिन है। ऐसा हो सकता है कि किसी खास समय तक वह द्वंद्व महसूस नहीं हो लेकिन अचानक बाहर निकल आता है। लेकिन यह दूसरे तरह के विचारों के संपर्क में आने के बाद ही संभव होता है।

उत्तर : हम सब लोगों के साथ भी ऐसा ही हुआ है। हम सब लोग भी एक समय तक घोर धार्मिक रहे हैं और अचानक यह लगने लगा कि यह तो कुछ जम नहीं रहा है।

प्रश्न : शायद इसका ताल्लुक जीवन अनुभवों से ज्यादा है। यदि एक व्यक्ति अपने और अपने आसपास के प्रति सचेत है तो वह जीवन स्थितियों पर सवाल खड़े करता है। तब जाकर कहीं उसके मन में सवाल खड़े होते हैं कि यदि ऐसा है तो क्यों है।

उत्तर : यदि हम मानते हैं कि आदमी में अक्ल होती है और सामाजीकरण उस अक्ल को बन्द नहीं कर देता, और कर भी नहीं सकता।

प्रश्न : लेकिन फिर भी थोड़ा पर्दा तो डाल ही देता है। जैसा कि आमतौर पर देखा जाता है...

उत्तर : पर्दा डालता है लेकिन उसमें एक छेद भी बनाकर डालता है। और उस छेद से देखते हैं तो उससे काफी कुछ दिख जाता है। इस दुनिया में ऐसा कोई पर्दा नहीं बना है जिसमें छेद नहीं हो।

प्रश्न : कार्ल पॉपर शायद इसी चीज के लिए कहते हैं कि आदमी के मन के बारे में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

उत्तर : यही आदमी के दिमाग की सबसे बड़ी चीज है। देखिए, मैं पिछले दो दिन से यही कह रहा हूं कि आदमी के दिमाग में एक ऐसी पुड़िया है जिसके अन्दर क्या है, यह किसी को भी नहीं पता। खुद उस पुड़िया को भी नहीं पता कि उसके अन्दर क्या है और उसके अन्दर से क्या निकलकर आएगा। वो अद्वितीय है।

प्रश्न : तो क्या आप यह कह रहे हैं कि सामाजीकरण, बचपन के लालन-पालन और परिवेश, जिसमें बच्चा पलता-बढ़ता है, वह बहुत ज्यादा फर्क नहीं डालता ? उसके विकास पर, सोच पर और आगे के व्यवहारों पर ?

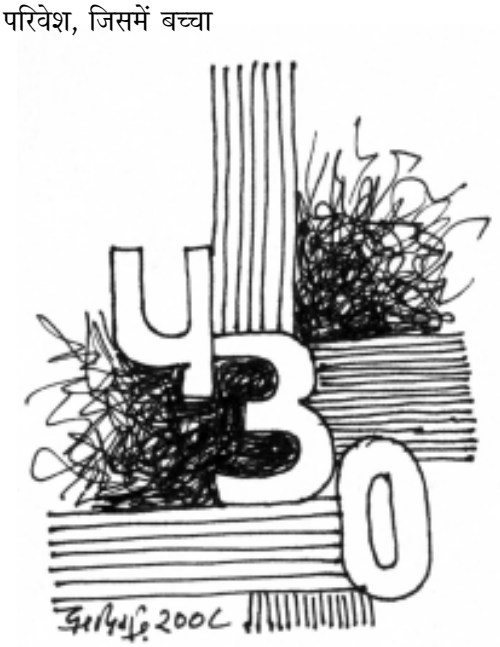

उत्तर : नहीं, ऐसा नहीं है। फर्क पड़ता है लेकिन यह फर्क निर्णायक नहीं हो सकता। आप यह नहीं कह सकते कि मैंने इस बच्चे को ऐसे पाला-पोषा है तो यह ऐसा ही बनेगा। सारी दुनिया के तमाम मां-बापों का यही अनुभव है। रूसी क्रान्ति के बाद मकारेंको कहते हैं कि कितने क्रान्तिकारी मेरे पास आकर रोते हैं कि हमने क्रान्ति के लिए अपना खून दिया, बलिदान दिया लेकिन हमारा बेटा ऐसे कहता है। बहुत से धार्मिक माता-पिता भी ऐसा कहते हैं कि हमने अपने बेटे को धर्म की कितनी शिक्षा दी लेकिन वह आज नास्तिक बना फिरता है। यदि सब कुछ सामाजीकरण से तय हो जाता तो ऐसा नहीं होता। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि सामाजीकरण का कोई प्रभाव नहीं है। मैं सामाजीकरण के विपरीत नहीं कह रहा हूं। मैं केवल इतना कह रहा हूं कि हम सामाजीकरण को निर्णायक शक्ति नहीं मान सकते। कई आयाम हैं जो सामाजीकरण से तैयार हो जाते हैं, तय किए जाते हैं। लेकिन आप लिखके नहीं दे सकते कि ऐसा ही होगा। आप व्यापक अनुमान जरूर लगा सकते हैं कि यदि उच्च वर्ण का बच्चा है तो ऐसा करेगा। मगर आप लिख के नहीं दे सकते कि वह ऐसा ही करेगा। हो सकता है कि आप अन्दाज से बता सकें कि ऐसा हो सकता है लेकिन वह ऐसा करेगा कि नहीं यह ईश्वर भी नहीं बता सकता।

प्रश्न : हमारे यहां एक समस्या खासतौर से कही जाती है कि, खासतौर पर एनसीईआरटी की किताबों के संदर्भ में, इनमें किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व सही तरीके से नहीं हुआ है और इससे उनकी भावनाएं आहत हुई हैं इसलिए इस विषयवस्तु को पाठ्यपुस्तक में नहीं रखना चाहिए। पिछली बार इतिहास की किताबों पर विवाद इसी प्रकृति का था कि किसी खास वर्ग, जाति या धर्म का उचित प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। किताबों पर, खासकर इतिहास की किताबों पर, इस नजरिए को; इतिहास के प्रति दृष्टि को आप कैसे देखते हैं ?

उत्तर : यदि एक तरफ से देखें तो मैं कहूंगा कि यह बनाई गई संवेदनशीलता है। मैंने इस तरह के जितने मामले, ज्यादातर, देखे हैं उनमें यह जबरदस्ती बनाई जाती है। जो चीज किताब में नहीं कही गई होती है उसका प्रचार किया जाता है कि किताबों में ऐसा कहा गया है और इसीलिए बड़ा बवण्डर मच जाता है। पहला सवाल यही है कि क्या वास्तव में पाठ्यपुस्तकों में लोगों की भावना को आहत करने वाली बातें लिखी

हैं ? यदि हम पाठ्यपुस्तकों में यह लिख दें कि मुगल साम्राज्य से लड़ने के दौरान जाटों ने आप-पास के गांवों में लूट-पाट मचाई। अब कोई इसे यह कहकर व्याख्यायित करने लगे कि जाटों को लुटेरे कह दिया और मैं जाट हूं तो निश्चित रूप से मुझे लगेगा कि हम लोगों को यानी हमारे मां-बाप-दादाओं को लुटेरे कहा गया है। संभवतः पाठ्यपुस्तक में लिखा होगा कि जाट विद्रोहियों ने आसपास के गांवों को लूटा। लेकिन जब इसे एक राजनैतिक मुद्दा बनाकर भीड़ इकट्ठी करनी हो तो कह देते हैं कि जाटों को लुटेरे कहा जा रहा है। ये कैसे इतिहासकार हैं, इस किताब को तुरन्त जलाओ!

मैंने ज्यादातर उदाहरण ऐसे ही देखे हैं। वास्तव में शब्दों में जाकर देखें तो बहुत ही गोल-मोल सी चीजें कही गई हैं जिन्हें अच्छे से अच्छे जाट या दूसरे समाज के लोग भी अन्यथा नहीं लेंगे। एक समस्या यह है कि मुद्दे का अनावश्यक राजनीतिकरण किया जाता है। दूसरी समस्या इसमें निहित है कि यदि किसी पाठ्यपुस्तक में ऐसा लिखा भी है तो यह अपेक्षा की जा रही है कि उस धर्म या जाति या वर्ग के स्वयंभू ठेकेदारों से किताब को प्रमाणित करवाया जाना चाहिए कि उनका इतिहास सही है या नहीं है। अगर इतिहास की एक किताब में यह लिखा जाता है कि तीर्थंकर के काल निर्धारण को लेकर समस्या है और जो प्रमाण हैं वे छठी शताब्दी ईसा पूर्व से आगे नहीं जाते। मान लीजिए, एक इतिहासकार यह कहता है। उसका सही या गलत होना ऐतिहासिक बहस का मुद्दा है लेकिन यदि मैं जैन धर्म का ठेकेदार हूं तो कहूंगा कि हमारे धर्म में तो यह लिखा है कि तीर्थंकर अनादिकाल से हैं और इतिहाकारों ने ऐसा कैसे लिख दिया। निर्णय किसका हो; संवाद कैसे हो ?

वास्तव में यह सामान्य रूप से समस्याजनक स्थिति है और इससे यह संवेदनशील मसला बन जाता है। माना कि इतिहास में कहीं यह प्रसंग आता है और इतिहासकार यह लिखना चाहे कि वास्तव में भारत में राम नाम के सज्जन कहीं थे ही नहीं। ऐतिहासिक प्रमाण यह कहते हैं कि राम नाम के सज्जन ने अयोध्या में कभी राज किया ही नहीं। कोई पाठ्यपुस्तक में कह सकता है कि इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते।

मैं कहूंगा कि यह एक समस्यात्मक चीज है। तमाम प्रमाणों के बावजूद एक समुदाय दिल से मानता है कि राम जी हुए थे और अनादिकाल से रह रहे हैं तो उनसे सीधे प्रतिवाद न करके सुविचारित तरीके से कहना चाहेंगे कि नहीं, ऐसा नहीं है। यह एक सोचने का विषय है। मैं यह कहूंगा कि आप एक सुझाव रखें कि इतिहास में जिस तरह की समस्याएं हैं और साक्ष्य मिलते हैं, इनके आधार पर इस विषय पर विचार करने की जरूरत है। मैं कहूंगा कि आप बहुत ज्यादा अपमानजनक कथन न करें। इसलिए नहीं कि धर्म के ठेकेदारों के सामने आप झुक रहे हैं। मेरा कहना केवल इतना है कि अनावश्यक रूप से एक ऐतिहासिक मुद्दे का भड़काऊ राजनीतिकरण करने से बचाने की जरूरत है। अनावश्यक रूप से एक पूरे समाज को नाराज करने की जरूरत भी नहीं है। इससे इतिहास की बहस इस बात पर केन्द्रित हो जाती है कि ये लोग हमारे भगवान को नकारना चाहते हैं। मुझे लगता है कि आस्था के मामलों को वैज्ञानिक और संवेदनशील तरीके से साधने की जरूरत है। क्योंकि यदि इस तरह के मसलों को उचित तरीके से निपटारा नहीं किया जाएगा तो इसके दूसरे अंजाम होंगे, बवंडर होगा और वास्तव में अनुचित ध्रुवीकरण को मदद मिलेगी। यह बेवजह ऐसे लोगों के हाथों में हथियार उठाकर देना है। कहने का मतलब है कि यदि खास शब्द का इस्तेमाल न करके उसी अवधारणा पर ज्यादा सटीक तरीके से विचार विमर्श करते तो बवंडर मचाने के लिए जो हैंडिल मिला था कि हमें विदेशी बोल दिया, ऐसा नहीं होता। बवंडर मचाने वाले अक्सर हैंडिल खोजते हैं और यदि वह नहीं है तो वहां एक हैंडिल लगा देते हैं। जैसे कि जाट नेताओं ने हैंडिल लगा दिया कि इतिहासकारों ने जाटों को लुटेरा कह दिया।

प्रश्न : इतिहास को लेकर एक बहस यह भी है कि बच्चों को किस उम्र में इतिहास पढ़ाया जाना आरंभ करना चाहिए ?

उत्तर : हर उम्र में पढ़ाया जाना चाहिए।

प्रश्न : क्या प्राथमिक स्तर पर इतिहास पढ़ाया जा सकता है ?

उत्तर : बच्चे के पैदा होते ही हम इतिहास पढ़ाते हैं। जब बच्चे का नामकरण होता है वहीं से हम इतिहास पढ़ाना शुरू करते हैं। हिन्दुस्तान में नामकरण किसे कहते हैं ?

प्रश्न : हां, नामकरण तो बच्चे के पैदा होने पर कराते हैं।

उत्तर : क्या बाप का नाम नहीं बताते हैं ? सब बताते हैं, गोत्र बताते हैं और यह पैदा होने के बाद ही शुरू हो जाता है। यदि ऐतिहासिक बोध सामाजीकरण का अंग है तो उसे औपचारिक शिक्षा शुरू होने के साथ भी आरंभ किया जा सकता है।

प्रश्न : लेकिन यदि इतिहास को प्राथमिक और आरंभिक स्तर पर विधिवत स्कूली औपचारिक शिक्षा का हिस्सा बनाएं तो इसकी क्या चुनौतियां होंगी ? क्योंकि ऐतिहासिक ज्ञान बहुत से साक्ष्यों पर निर्भर करता है, इतिहासकारों की दृष्टि और विचारधाराओं पर निर्भर करता है। इतनी जटिलताएं इतिहास से जुड़ी होती हैं, बच्चों के साथ इन्हें ध्यान में रखते हुए कैसे काम हो सकता है ?

उत्तर : देखिए, इससे पहले भी बच्चे जटिल विचारों को पकड़ लेते हैं और अपना लेते हैं। ये तो कुछ भी नहीं हैं, ये तो बच्चों का खेल है। इसकी हमें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। हम जितनी अपेक्षा करते हैं उससे कई गुना ज्यादा जटिलताओं का निपटान करने में बच्चे सक्षम होते हैं और करते रहते हैं। यदि यह चिन्ता है कि इतनी जटिल चीजें बच्चों को नहीं बताई जा सकतीं तो उन्हें सरल करके बता दें। इतिहास के तरीकों के बारे में दैनिक जीवन के मुद्दों पर बात करते हुए परिचित करा सकते हैं। बच्चों में जिज्ञासा होती है, वे जानना चाहते हैं। उनसे बात की जा सकती है कि राजा क्या करते थे ? रानी क्या करती थीं ? आम आदमी क्या करता था ? बच्चों की जिज्ञासा में ये समस्याएं नहीं हैं कि वे सिर्फ सामाजिक संदर्भ की चीजें ही जानना चाहते हैं। यदि आप बच्चों को राजा-रानी की कहानी के बारे में बताओगे तो वे उनके बारे में जानना चाहेंगे। पुराने जमाने के लोगों के जीवन के बारे में बताओगे तो उसके बारे में भी जानना चाहेंगे। क्योंकि उनका समय का बोध पहले विकसित हो जाता है कि आज क्या है और बहुत पहले क्या था। उसको आप कहीं धीरे-धीरे समझाने का प्रयास कर सकते हैं। अगर आपको इस बात की बहुत ज्यादा चिन्ता है कि जटिलता पैदा नहीं करनी है तो आप जरूर उसे मद्धिम तरीके से अलग-अलग तत्वों से परिचित करा सकते हैं।

इतिहास शिक्षण में कहानी की समस्या यह है कि इससे तथ्य और कल्पना के बीच की सीमा रेखा मिट जाती है। इतिहास शिक्षण से जुड़े लोगों की कहानी को लेकर मुख्य समस्या यही है। यानी जब कहानी का उपयोग इतिहास शिक्षण में होगा तो तथ्य और कल्पना की सीमा रेखा खत्म हो जाएगी। संभव है इससे अच्छी कहानी जरूर सुना पाएं लेकिन उस कहानी को पकड़कर कोई दूसरी कहानी भी पढ़ा सकता है जो तथ्यात्मक नहीं हो।

किसी नजरिए के पूर्वाग्रहों के बारे में चार-पांच साल के बच्चों से बात कर सकते हैं। क्योंकि इस उम्र में बच्चों में आत्म विकेन्द्रण नाम की प्रक्रिया शुरू होने लगती है। वह पूर्वाग्रहों को समझने की प्रक्रिया है। पियाजे की 'स्टेजेज ऑफ कॉगनेटिव डवलपमेंट' यह बताती हैं कि बच्चे धीरे-धीरे यह समझने लगते हैं कि मेरे अलावा भी दुनिया है। और दुनिया को उधर से भी देखा जा सकता है और इधर से भी। दुनिया उधर से देखने पर अलग दिखती और इधर से देखने पर अलग दिखती है। जब यह समझ बच्चों में विकसित होने लगती है तब वे प्राथमिक स्कूल में आते हैं। हालांकि इसको लेकर कई बहस हैं, इससे आगे आत्म-विकेन्द्रण होने के कई प्रयोग हैं लेकिन फिर भी बच्चे आत्म-विकेन्द्रण करने लगते हैं। पूर्वाग्रहों के मामले को बच्चा आत्म-विकेन्द्रण की प्रक्रिया के तहत ही समझने लगता है। ऐसी कोई समस्या नहीं है कि वह 18 साल के होने पर ही समझेगा। बच्चे यह समझते हैं कि दुनिया बदलती है। पहले के जमाने में कुछ और तरह के लोग रहते थे। वे देखते हैं कि हमारे दादा-दादी अलग तरह से रहते हैं और हम अलग तरह से। यही परिवर्तन के

बारे में बात करने का एक आधार बन जाता है। औपचारिक इतिहास, भारत का इतिहास या विश्व इतिहास, के बारे में यह तय किया जा सकता है कि उसे छठी कक्षा से पढ़ाएं या कब से पढ़ाएं ? लेकिन मैं मानता हूं कि यदि औपचारिक शिक्षा को चार साल से शुरू करें तो तब ही से इतिहास बोध के तत्वों पर बातचीत भी शुरू कर सकते हैं।

प्रश्न : इतिहास शिक्षण के संदर्भ में यह भी कहा जाता है और यह शायद प्रचलित तरीकों के विरोध में ही पनपा होगा कि, इतिहास को कहानी के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। ऐसे प्रयोग टॉल्सटॉय ने भी किए थे लेकिन उन्हें लगा कि बच्चों की दिलचस्पी के बावजूद इससे गड़बड़ी हो रही है...

उत्तर : क्या गड़बड़ी हो रही थी ?

प्रश्न : उन्होंने कहा कि वे बच्चों को रूस का इतिहास पढ़ा रहे थे और रूस पर फ्रांस के आक्रमण के किस्से सुना रहे थे। इससे बच्चों में देश भक्ति का एक प्रचंड ज्वार जागता हुआ दिखाई दिया। दुश्मन देश के प्रति आक्रामकता और नफरत का भाव भी।

उत्तर : मैं देख रहा हूं कि आपके ही शहर में बड़े-बड़े होर्डिंग्स लगे हुए हैं (क्रिकेट में आईपीएल ट्वंटी-20 मैचों के दौरान, ये खिलाड़ी नहीं हैं, योद्धा हैं आदि-आदि)। तो कहानी क्या कर लेगी ? जब खेल यह कर सकता है तो कहानी का क्या कहना! कहानी क्या, खेल से भी आक्रामता आ रही है, ज्यादा भयानक रूप से। आईपीएल के विज्ञापनों को देखिए। बॉम्बे बनाम दिल्ली, बॉम्बे बनाम पंजाब, बॉम्बे बनाम जयपुर। पहले तो भारत बनाम पाकिस्तान होता था अब तो लोग पंजाब और राजस्थान को लड़वा रहे हैं।

देखिए, कहानी संवेदना को जगाने की एक विधा है। कौनसी संवेदना को आप जगाना चाहते हो वह आपके ऊपर है। वैसे ही खेल भी एक विधा है। खेल से क्या कर रहे हैं, इसे आप देख ही रहे हो! खेल आप खेलने के लिए खेल सकते हैं और लोगों को लड़वाने के लिए भी। कहानी की मूल समस्या यह नहीं है कि उससे आक्रामकता बढ़ती है।

इतिहास शिक्षण में कहानी की समस्या यह है कि इससे तथ्य और कल्पना के बीच की सीमा रेखा मिट जाती है। इतिहास शिक्षण से जुड़े लोगों की कहानी को लेकर मुख्य समस्या यही है। यानी जब कहानी का उपयोग इतिहास शिक्षण में होगा तो तथ्य और कल्पना की सीमा रेखा खत्म हो जाएगी। संभव है इससे अच्छी कहानी जरूर सुना पाएं लेकिन उस कहानी को पकड़कर कोई दूसरी कहानी भी पढ़ा सकता है जो तथ्यात्मक नहीं हो। फिर इसका कोई आधार नहीं रहेगा कि यह कहानी पढ़ाओ और यह मत पढ़ाओ। यदि तथ्य और कल्पना की सीमा बनाए रखनी है तो कहानी विधा से कुछ लोगों को चिन्ता होती है, मुझे नहीं होती। वे भी उतने ही सही हैं जितना मैं हूं। मुझे लगता कि कहानी का उपयोग करना चाहिए और उसकी उपयोगिता को खोना नहीं चाहिए। उसकी उपयोगिता यह है कि कहानी में सामंजस्य होता है। साहित्य में लेखक विषय को बांधता है। शुरू से अंत तक पढ़ने पर लगता है कि यह बात कही जा रही है। दूसरे, कहानी में मानवीय संवेदनाओं को रख पाने की संभावना काफी ज्यादा और सशक्त होती है। यदि इतिहास के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं की चर्चा करना चाहते हैं, मनुष्य के बारे में लोगों को समझाना चाहते हैं और पाठ में एक कसावट लाना चाहते हैं तो कहानी एक अच्छा तरीका हो सकती है। सामान्य रूप से ऐतिहासिक पाठ में यह नहीं पाया जाता और बोरियत होती है। कुछ लोगों को लगता है कि इसी वजह से यह नहीं होना चाहिए क्योंकि कहानी के माध्यम से इतनी सशक्त और कल्पनात्मक छवि बन जाती है जिसे कि खतरनाक माना जाता है।

प्रश्न : कई बार यह देखने में आता है कि बहुत-सा साहित्य जो कि इतिहास के अनुशासन में नहीं लिखा जाता लेकिन वह ऐतिहासिक समस्याओं को पाठक के दिमाग में कहीं अटका देता है। बहुत से उपन्यास हैं जो कि व्यक्ति के मन में पाठ्यपुस्तकों या समाज द्वारा बनी छवियों पर सवाल खड़े करते हैं। मुझे लगता है कि साहित्य भी ऐसा माध्यम हो सकता है जो ऐतिहासिक रूप से बन चुकी रूढ़ छवियों को प्रश्नित करते

हैं। ऐतिहासिक उपन्यास या कहानियों को शिक्षण में कितना महत्त्व दिया जा सकता है ?

उत्तर : देखिए, इसमें तो कोई दोराय नहीं है कि ऐतिहासिक कल्पनाशीलता और इतिहास संबंधी प्रश्न ऐतिहासिक साहित्य पैदा कर सकता है। लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि इस तरह का साहित्य ऐतिहासिक बोध विकसित करने के लिए अनुशंसित किया जाए ? मैं कहूंगा कि इतिहास की चर्चा और ऐतिहासिक मुद्दों के बारे में बहस को लोग गंभीरता से लें और इसके कई तरीके हो सकते हैं। इसका एक तरीका टी.वी. में चर्चा हो सकती है, टी.वी. के धारावाहिक हो सकते हैं, आचार्य चतुरसेन के उपन्यास भी हो सकते हैं, लोकप्रिय कहानी भी हो सकती हैं। लेकिन इसकी सीमा है। इसके अलावा एक तरीका इतिहासकारों के द्वारा लोकप्रिय लेखन भी हो सकता है।

एक समय में लोकप्रिय इतिहास, लोकप्रिय विज्ञान और लोकप्रिय गणित जैसी चीजों का आन्दोलन चला था। तब सब लोग प्रयास करते थे। अब सब बंद हो गया। अब कोई लोकप्रिय-वोकप्रिय तो मानता ही नहीं है। अब तो वैश्वीकरण का जमाना है। आम आदमी के लिए लिखना हमारे यहां काफी शिथिल हुआ है जिसे पुनः सशक्त बनाने की जरूरत है। एक दौर था जब यूरोप, अमेरिका और रूस में आम आदमी के लिए लिखा जाता था। पता नहीं अब वहां कोई लिखता है या नहीं। उस समय वहां बहुत-सी किताबें लिखी गईं जो कि आम आदमी के लिए थीं। तब महान इतिहासकार, अर्थशास्त्री या वैज्ञानिक आम मजदूर और आम आदमी के लिए किताब लिखते थे। फ्रांसिसी इतिहासकारों का एक संगठन था जिसकी अनेक किताबें बेस्ट सेलर बनीं। बीच में हमारे यहां भी ऐसा दौर था लेकिन अब 15-20 सालों से कहीं नहीं दिखता है। इतिहास में बहुत से लोगों की रुचि उसकी वजह से पैदा हुई। तमिल भाषा में काफी प्रसिद्ध ऐतिहासिक साहित्य है। लेकिन कथात्मक ऐतिहासिक साहित्य ऐतिहासिक लेखन का विकल्प नहीं है। अतः इतिहासकारों को लोकप्रिय इतिहास भी लिखना चाहिए।

यदि बच्चों में आलोचनात्मक सोच विकसित करनी है तो उनको व्यस्त करिए, उनसे संवाद करिए, उनसे सवाल करिए, उन्हें सवाल करने दीजिए। इससे ज्यादा इसका कोई सूत्र नहीं हो सकता। संवाद बना रहना चाहिए। संवाद में उनको मजा आना चाहिए और शिक्षक भी मजा आना चाहिए।

प्रश्न : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की नई किताबों के बारे में क्या राय है ?

उत्तर : बहुत अच्छी किताबें हैं। अच्छे इतिहासकारों ने लिखी हैं।

प्रश्न : क्या अच्छा है ?

उत्तर : क्या अच्छा, क्या बुरा है ! देखिए, उसमें दो चीजें बहुत अच्छी हैं। पहली बात तो यह कि उसमें इतिहास के अर्थ या दायरे को खोलकर काफी वृहत्त किया गया है। उनमें ऐतिहासिक अध्ययन के अन्तर्गत खेलों, कला और लोगों के रहन-सहन के मुद्दों को भी शामिल किया गया है। ऐसी तमाम चीजें उनमें हैं जो पहले इतिहास के दायरे के बाहर थीं। पहले इतिहास में राजा-रानी होते थे, समाज होते थे, समाज के परिवर्तन होते थे लेकिन इस बार इन बारीकियों को शामिल करके इतिहास को समृद्ध करने का एक प्रयास किया गया है। दूसरी बात यह है कि इतिहास लेखन और पाठ्यपुस्तक लेखन में भी कई तरह की विधाओं का उपयोग करके काफी समृद्ध करने का एक प्रयास है। इसमें स्रोतों के बारे में लिखा है, इसमें बॉक्स में सामग्री है। पहले यह होता था कि बस उपशीर्षक के साथ पाठ होता था। लेकिन इस बार पाठ सपाट न होकर एक सामासिक पाठ है। जिसमें पाठ है, चित्र हैं, पाठ के अन्दर भी विविधता है, प्रश्न हैं। कहने का मतलब है कि एक सामासिक प्रकृति लाने का एक प्रयास है जो पहले कभी, ज्यादातर, नहीं था।

इनमें दो-तीन तरह की समस्याएं भी हैं। एक तो फीड बैक लेने का कोई तरीका नहीं है। एक बात जो मैंने पहले कही थी कि ये अच्छे इतिहासकारों द्वारा लिखी गई अच्छी किताबें हैं लेकिन स्कूल में पढ़ाते हुए कक्षा कक्ष की क्या जरूरत है, शिक्षक की क्या जरूरत है, उसे ध्यान में रखते हुए पाठ को व्यवस्थित ढांचे में रख

पाना संभव नहीं हो पाया है। यह इसलिए नहीं हो पाया है क्योंकि एनसीईआरटी के ढांचे में पाठ्यपुस्तक निर्माण में दो स्कूल शिक्षक होते हैं जो बैठक में नजर आते हैं और फिर गायब हो जाते हैं। पाठ को व्यवस्थित ढांचे में बांधना तब सही रूप से हो पाता है जब एक तरह का पाठ लिखने के बाद शिक्षक कक्षा में पढ़ाएं और किताब लिखने वाले पढ़ाते हुए उन्हें देखें एवं उस अनुभव के आधार पर पाठ को बदलने का काम करें। यह प्रक्रिया अभी भी नहीं हो पाई है। एक कमी तो यह है जिसे मैं शिक्षाशास्त्रीय कमी कहूंगा। इसकी वजह से कई छोटी-छोटी चीजें आप देख सकते हैं। जैसे कि, अवधारणा कैसे विकसित करनी है, अवधारणा की सघनता कितनी है और पाठ की तुलनीयता कितनी है।

मुझे दूसरी समस्या यह लगती है कि एनसीईआरटी ने जो नया ढांचा बनाया है उसमें नई तरह की ऐतिहासिक सोच है, मुझे मालूम नहीं कि यह कितना स्वीकारने योग्य है, लेकिन यह मेरी व्यक्तिगत सोच है कि; देश, इतिहास या घटना को परिवर्तन के नजरिए से नहीं देखकर उसे अपने आप में पूर्णता में देखा गया है। यदि आप परिवर्तन की नजर से देखते हैं तो उसकी तुलना आगे-पीछे से करनी पड़ती है। मुझे लगता है कि इसे जानबूझ कर, सोच-समझकर दूर रख गया है। तुलना या परिवर्तन को केन्द्र में नहीं लाने में एक निहित समझ है। क्योंकि परिवर्तन की जो समझ पहले थी उसमें बहुत से इतिहासकारों के विचारों में परिवर्तन हुआ है। वह बदलाव इन किताबों में दिखाई देता है। इसके काफी कुछ वाजिब कारण हैं लेकिन यह एक फैशन भी बन गया है। लेकिन इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन करना जरूरी है, शायद कभी किया भी जाए। लेकिन मेरा मानना है कि इनमें परिवर्तन और परिवर्तन की प्रक्रिया को एक कमजोर स्तर पर रखा गया है और यह सोच-समझकर किया गया है, बिना सोचे नहीं किया गया है।

प्रश्न : अन्त में, समेकित करते हुए एक सवाल है कि यदि बच्चों में इतिहास की आलोचनात्मक समझ या सही ऐतिहासिक बोध विकसित करना हो तो किस तरह से किया जा सकता है ? इसके लिए बच्चों के साथ कैसे काम करें ? इसके क्या तरीके हों ?

उत्तर : इसका जवाब यही है कि यदि बच्चों में आलोचनात्मक सोच विकसित करनी है तो उनको व्यस्त करिए, उनसे संवाद करिए, उनसे सवाल करिए, उन्हें सवाल करने दीजिए। इससे ज्यादा इसका कोई सूत्र नहीं हो सकता। संवाद बना रहना चाहिए। संवाद में उनको मजा आना चाहिए और शिक्षक भी मजा आना चाहिए।

प्रश्न : शिक्षा की धुरी शिक्षक होता है। शिक्षा के नाम पर जो कुछ भी होना है वह शिक्षकों के माध्यम से होना होता है। इसके लिए शिक्षकों की किस तरह की तैयारी होनी चाहिए ?

उत्तर : आप शिक्षकों के साथ भी संवाद करिए। यदि आपको बहुत चिन्ता है कि वे सही इतिहास पढ़ाएं तो इतिहासकार बैठकर शिक्षकों के साथ संवाद करें। उनको बिठाएं और उनके साथ अपनी बात रखें, उनकी बात सुनें और समानता का व्यवहार करते हुए एक बहस करें। वही बहस कक्षा में भी जाएगी। यदि आप यहां डंडा मारकर कहोगे कि ये किताब पढ़ाओ तो वे वहां जाकर यही करेंगे और वह किताब पढ़ा देंगे। शिक्षकों से आप जो चाहते हैं वही आप शिक्षकों के साथ करिए। यदि आप कक्षा में संवाद चाहते हैं तो आप शिक्षकों के साथ करिए। शिक्षकों को संवाद में आनन्द लेने दीजिए और आप भी लीजिए क्योंकि संवाद एक तरफा नहीं हो सकता। ◆